Conclusion

" उपसंहार "

आचार्यत्व- समग्र दृष्टि से :

रीतिकालीन सर्वांग-निरूपक आचार्यों में परिगण्य कुँवरकुशल ने अपने वृहद् रीति-ग्रन्थ `लखपति जससिन्धु` में काव्य के सभी अंगों को परिवेशिष्टत किया है। डॉ0 सत्यदेव चौधरी ने काव्य के प्रमुख अंगों की गणना इस प्रकार की है -

(1) काव्यस्वरूप(काव्यलक्षण-काव्यभेद, काव्य-प्रयोजन, काव्य-हेतु।
(2) शब्दशक्ति, (3) ध्वनि (4) गुणीभूतव्यंग्य (5) दोष (6) गुण, (7) रीति,
(8) अलंकार (9) नाट्यविधान (10) छन्द[1]।

उपर्युक्त काव्यांगों की सूची के परिप्रेक्ष्य में हम कह सकते हैं कि कुँवरकुशल ने `लखपतिजससिन्धु` में नाट्यविधान को छोड़कर शेष सभी अंगों का वर्णन किया है। नाट्य विधान न लेने के पीछे दो कारण दृष्टिगत होते हैं एक तो आधारभूत ग्रन्थ के कारण तथा दूसरा परम्परा का प्रभाव। कुँवरकुशल ने ग्रन्थ का मूल आधार मम्मट कृत `काव्यप्रकाश` रहा है जिसे स्वयं कुँवरकुशल ने भी स्वीकार किया (इस तथ्य की ओर संकेत प्रस्तुत प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में किया गया है)। `काव्य प्रकाश` में अन्य अंगों का तो विवेचन हुआ है परन्तु नाट्य-विधान को नहीं लिया है। इसी कारण मम्मट के अनुकरण पर कुँवरकुशल ने भी `नाट्य-विधान` का परित्याग किया है। दूसरा कारण तत्कालीन परम्परा का प्रभाव रहा है। रीतिकाल में जितने भी सर्वांग निरूपक ग्रन्थ लिखे गये, किसी में भी उक्त काव्यांग की चर्चा नहीं मिलती। इस समय नाट्य की अपेक्षा आचार्यों का

1- हिन्दी रीति -परम्परा के प्रमुख आचार्य- डॉ0 सत्यदेव चौधरी, पृ0 29

विवेचन काव्य के सन्दर्भ में ही किया हुआ मिलता है। अत: इस कारण भी कुँवरकुशल ने भी अपने ग्रन्थ में नाट्यविधान की चर्चा नहीं की है।

काव्य के प्रथम अंग काव्यस्वरूप के अन्तर्गत कुँवरकुशल ने काव्य के स्वरूप के उद्घाटक चारों तत्वों लक्षण, भेद, प्रयोजन, तथा हेतु के अतिरिक्त काव्य शरीर पर भी अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। इसके अंतर्गत ध्वनि को काव्यात्मा का पद दिया गया है और अपनी निजी मान्यता के अनुरूप गुण को अलंकारवत् स्वीकार किया है। (इस सम्बंध में विस्तृत चर्चा प्रस्तुत प्रबन्ध के छठें अध्याय में की गई है)। शब्द शक्ति के अंतर्गत कुँवरकुशल ने काव्य की तीन शक्तियों अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना का उपभेदों सहित विवेचन किया है। काव्य की चौथी वृत्ति तात्पर्यार्थ वृत्ति का ग्राह्य नहीं हुआ है। ध्वनि नामक काव्यांग का विवेचन एवं विश्लेषण भी विस्तृत रूप से प्रस्तुत किया गया है। यहीं पर रस की भी चर्चा की गई है जिससे काव्य में ध्वनि के पश्चात् रस को ही महत्वपूर्ण स्थान मिला है। रस के अंतर्गत कुँवरकुशल ने नायिका भेद को नहीं लिया है। इसके पीछे भी मम्मट का अनुकरण एवं रीतियुगीन सर्वांग निरूपक ग्रन्थों की परम्परा ही रही है। मध्यम काव्य का स्वतंत्र-विवेचन एक अलग ही तरंग (सप्तम तरंग) में प्रस्तुत किया है। गुणों के अंतर्गत केवल तीन गुणों माधुर्य, ओज तथा प्रसाद का ही उल्लेख किया है। वामन सम्मत दस गुण नहीं बताये हैं। यों आचार्यों ने तीन ही गुण स्वीकार किये हैं तथापि दस गुणों का वर्णन भी अवश्य किया है। परन्तु कुँवरकुशल ने ऐसा नहीं किया है क्योंकि सभी विद्वान् वामन-सम्मत दस गुणों से परिचित हो ही चुके थे। इसलिए व्यर्थ के पिष्ट-पेषण से बचे हैं। दोष के अंतर्गत शब्द-अर्थ, वाक्य तथा रस दोषों का विवेचन करते हुए अन्त में कुछ दोषों का परिहार भी प्रस्तुत किया है। अलंकारों में शब्दालंकार तथा अर्थालंकार का वर्णन मिलता है। शब्दालंकारों में यमक तथा चित्रालंकार का विस्तृत विवेचन किया है। यहीं पर रीति का मम्मट की भाँति अनुप्रास के अंतर्गत

उल्लेख किया है, विश्वनाथ की भाँति अलग से नहीं। अर्थालंकारों में भी उनकी प्रवृत्ति विस्तृतीकरण की ओर रही है और चन्द्रालोक तथा कुवलयानन्द के आधार पर अपना वर्णन किया है।

अत: समग्रतया हम कह सकते हैं कि कुँवरकुशल एक कुशल आचार्य के रूप में हमारे समक्ष आते हैं। सामग्री संकलन की दृष्टि से देखें तो कुँवरकुशल ने सभी अंगों के समस्त पक्षों का विवेचन करते हुए विस्तृत सामग्री प्रस्तुत की है। इनमें विषय-विस्तार भी खूब मिलता है। सार ग्रहण की दृष्टि से देखें तो वर्णन करते समय जिस ग्रन्थ का मत जहाँ पर उपयुक्त प्रतीत हुआ, वहीं उसे लेने में किसी प्रकार का संकोच नहीं किया है। अत: मुख्य रूप से मम्मट तथा कुलपति मिश्र तथा कहीं-कहीं विश्वनाथ, केशवदास, देव को भी माध्यम बनाया है और अलंकार-विवेचन में चन्द्रालोक तथा अप्पयदीक्षित को लिया है। अत: अपने कथन के स्पष्टीकरण के लिए तथा सरल रूप देने के लिए हर संभव प्रयास किया है। और अपने इस प्रयास में उन्हें सफलता मिली है। कुँवरकुशल की शैली भी रीतियुगीन आचार्यों के अनुरूप ही रही है अर्थात् दोहे अथवा सोरठे के लक्षण देकर कवित्त अथवा सवैया में उदाहरण देना। कुँवरकुशल अपने आचार्यत्व के रूप में सफल हुए हैं इसका दो अन्य दृष्टिकोणों से भी होता है एक तो विवेचन के प्रारम्भ में सूची के रूप में प्रमुख तथ्यों का उल्लेख करना तथा अन्त में पुनरावर्तन करते हुए प्रमुख तथ्यों की ओर संकेत करना। ऐसा प्रयास इसीलिए किया गया है क्योंकि कुँवरकुशल अपने वास्तविक जीवन में भी आचार्यत्व का कर्तव्य निभा रहे थे। महाराव लखपतिसिंह द्वारा स्थापित ब्रजभाषा काव्यशाला में आचार्य नियुक्त किए गये थे जिनके समक्ष इनका शिष्य समुदाय भी था। यही दृष्टिकोण ग्रन्थ की रचना करते समय भी रहा। रीति ग्रन्थों का प्रणयन प्रमुख रूप से लोगों को शिक्षा देने के उद्देश्य से ही किया गया था। दूसरा दृष्टिकोण कुँवरकुशल के अन्तर स्पष्ट करने का रहा है। जहाँ कहीं भी एक जैसे दो तथ्यों का उल्लेख

मिलता है , उनमें निहित अन्तर को भी स्पष्ट करते चले हैं जैसे- करुणा एवं विप्रलम्भ श्रृंगार का अंतर तथा रौद्र एवं वीर रस का अन्तर ।

कवित्व समग्र दृष्टि से :

कुँवरकुशल के द्वारा प्रस्तुत उदाहरणों में ही उनकी काव्यात्मकता के दर्शन होते हैं। कुँवरकुशल के द्वारा दिये गये उदाहरणों में श्रृंगारिक भावों की अभिव्यक्ति मिलती है। तथा साथ ही आश्रयदाता की प्रशस्ति का भी गान किया गया है। श्रृंगारिक उदाहरणों में एक ओर राधा-कृष्ण का परस्पर मनोविनोद चित्रित है तो दूसरी ओर पारस्परिक अनन्य प्रेम, कृष्ण के प्रति राधा के उपालम्भ तथा विरहानुभूति की मार्मिक व्यंजना करने वाले उदाहरण भी मिलते हैं। आश्रयदाता की प्रशस्ति करते समय उनके प्रताप, उनके पराक्रम, ओज, उदारता तथा दानशीलता का वर्णन किया है। इतना ही नहीं महाराव के श्रृंगारिक पक्ष का भी चित्रण किया गया है।

नायक अन्यत्र कहीं रात्रि व्यतीत करके प्रातःकाल घर में पदार्पण करता है। नायक के नेत्र लालिमा लिये हुए हैं। इसी को देखकर नायिका उपालम्भ देते हुए बड़े ही सुन्दर ढंग से अपना कथन प्रस्तुत करती है -

'किधौं काहू नवीने ये चंद के चकोर भये ढग लाये यामिनी के चारौं जाम जागे हैं।
किधौं कोउ अनमिष व्रत लीनो देषियत प्रात ही के पंकज की छबि छीनि भागे है।
किंधौं कहूं नृत्य भेद निरषे हैं गायिनि के बंदन के रंगपहिराय राषे वागे हैं।
लाल -गुल औ गुलाल जीतत हैं प्यारे लाल साँची कहौ लोइन ये कौन रस पागे है।'[1]

1- ल.ज.सिं0, ष.त.छन्द सं0 96

यहाँ पर नायिका का उपालम्भ मुखरित हो उठा है।

राधा -~~कृष्ण दोनों~~ मानावस्था में हैं। कृष्ण ने राधा के पास दो तीन बार दूती को भेजा तब भी राधा नहीं मानीं। पुन: जब कृष्ण राधा के पास आये तब राधा बोलने पर भी नहीं बोलती और पीठ फेर कर बैठ जाती हैं। तब कृष्ण मन में खिसियाकर वापस लौट जाने की सोचते हैं और राधा मन में प्रिय के लौटने की बात का स्मरण कर झूठे ही छींक पड़ती है -

दूती कौं तो दोय तीन बार भेजी राधिका पैं मान्यौं नहीं बैन तबै
वतौं गह रूठि कै ।।
आय आप मोहन जू सोहैं भाय भाय थके बोली ना बुलायें बाल
बैठी पीय पूठि कैं ।।
मन मैं खिसाने पिय अति ही सयाने ह्यि बन जैबे काज आयुध लै
पाउ उठि कैं ।।
मन मैं बिचारि नारि रहैं पिय मेरे द्वार सुरति संभारि नारि
छींकी छींक जूठि कैं ।। [1]

यहाँ पर वर्णन बड़ा ही मधुर बन पड़ा है। चतुर्थ पंक्ति में नारी की स्वाभाविक प्रवृत्ति का तो चित्रण बड़ा ही मनोरम है। प्रिय द्वार से ऐसे ही लौट जाये इसका दु:ख होता है। अत: किसी भी प्रकार प्रिय रुक जाये ऐसा प्रयत्न करने के लिए छींक आने का बहाना बनाती है। यह भारतीय मान्यता रही है कि घर से बाहर जाते समय यदि कोई अन्य व्यक्ति छींक देता है तब जाने की बात का परित्याग कर दिया जाता है। कुँवरकुशल ने एक ओर तो लोकप्रचलित

1- ल.ज.सिं०, त्र.त.छन्द सं० 209

मान्यता का चित्रण कर दिया है तो दूसरी ओर नारी की सहज तथा स्वाभाविक प्रवृत्ति का दिग्दर्शन भी करा दिया है। प्रस्तुत उदाहरण की द्वितीय पंक्ति के अन्त में आया हुआ 'पूठि' शब्द सिन्धी भाषा का है जिसके प्रयोग से अन्त्यानुप्रास की पूर्ति भी हो गई है।

कुँवरकुशल ने महाराव लखपति जी के शृंगार तथा वीर दोनों पक्षों का चित्रण किया है। राजा के दरबार में गायिकाओं को संगीत की शिक्षा दी जाती थी। इनके साथ राजा के भी सम्बंध थे। लाल नामक गायिका राग रूपी सागर के क्षेत्र में चढ़-चढ़ कर सुचाल ग्रहण कर लेती है अर्थात् संगीत के क्षेत्र में पारंगत हो गई है और संगीत- पारखी रूपी जौहरियों के मन में लाल नामक मोती की भाँति अच्छी लगने लगी है। दूसरा अर्थ है - लाल गायिका सुरों की अनुवर्तिनी है, नारी की सुन्दर चाल में पगी हुई है। महाराज लखपति जी के मन में मोती की भाँति प्रिय लगने लगी है -

मई राग सागर मई चढि चढि रती सुचाल।
लषपति मनि मोती लगी लसति लाल सी लाल ।।[1]

यहाँ पर कुँवरकुशल ने वर्ण-मैत्री के द्वारा अपने कथन को प्रस्तुत किया है। दूसरी ओर राजा के तलवार का वर्णन गंगा के साथ तुलनात्मक रूप से प्रस्तुत करते हुए अप्रत्यक्ष रूप से तलवार की महत्ता की ओर संकेत किया है -

---

1- ल.ज.सिं0,प्र.त.छन्द सं0 136

'मिलि येक सागर मैं वह तौ मगन होति यह सात सागर फिरैया
वार पार की ।।
वह उपकंठ मैं प्रवाह सूधैं होहि रही यह परवाह कंठ काटैं बंक
धार की ।।
बातैं बढ़ै संषा यातैं कमला असंषा बढ़ैं यह प्रभु पाइनि की
परवार की ।।
यह महाराउ लषाधीर हाथ मैं बिराजी समता न सुर सुरीकीजैं
तर वारि की ।।[1]

एक स्थान पर कुँवरकुशल ने वात्सल्य भाव को भी अभिव्यक्ति दी है। माता यशोदा दही बिलो रही हैं, कृष्ण आकर उनसे दही की माँग करते हैं और उनकी साड़ी की किनारी को पकड़ लेते हैं। माता यशोदा कुछ क्षण ठहरने के लिए कहती हैं तो उन्हें क्रोध आ जाता है, वे जमीन पर लोटने लगते हैं माता उन्हें मनाने का प्रयास करती है परन्तु कृष्ण मक्खन नहीं लेते और न ही आँखे खोलते हैं लेकिन तिरछे देखते हुए मन में मुस्कराते हैं -

'माय जसोदा सों आय कह्यौं दधि दे पकरी कमरी की किनारी ।।
ढील करी टुक बैठौ लला जु बिलोवन हुं क्यों न तो बलिहारी ।।
रीस चढ़ी तब लेहि परे क्यों मनावति है जननी अनिनारी ।।
लैंन मांषन और तिरीछे चितै मुसकै न मनै अंष्यिां नउ धारी ।।[2]

यहाँ पर बाल सुभल चेष्टा का वर्णन किया गया है।

1- ल.ज.सिं0, प्र.त.छन्द सं0 136

2- वही- छन्द सं0 186

अत: हम कह सकते हैं कि कुँवरकुशल का कवित्व माधुर्य गुण युक्त, प्रांजल तथा सरस है वह मार्मिक तथा हृदयस्पर्शी भावों की अभिव्यंजना करने में समर्थ है और ओजपूर्ण शब्दावली के कारण अपने आश्रयदाता की वीरता तथा पराक्रम का चित्रण भी अच्छी तरह प्रस्तुत किया है।

पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव :

आचार्यों ने काव्य-प्रणेता के लिए तीन गुण शक्ति, अभ्यास तथा निपुणता निर्धारित किए हैं। अभ्यास के ही अन्तर्गत अपने पूर्ववर्ती कवियों के साहित्य के अध्ययन को लिया है। विशेष रूप से रीति ग्रन्थों के सन्दर्भ में यह तथ्य स्पष्ट परिलक्षित होता है। रीति ग्रन्थों के का आधार प्रमुखत संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ रहे हैं। परवर्ती कवियों ने सर्वत्र पूर्ववर्तियों का आवश्यकतानुसार अनुसरण किया है। इस क्रम में संस्कृत ग्रन्थों के साथ-साथ हिंदी के पूर्ववर्ती ग्रन्थ भी आते रहे हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि केशव, मतिराम, चिन्तामणि आदि के परवर्ती हिंदी कवियों ने जहाँ संस्कृत ग्रन्थों से सामग्री ली है वहीं हिंदी के इन अग्रणी कवि आचार्यों से भी प्रभूत रूप में प्रभावित रहे हैं। आचार्य कुँवरकुशल ने भी 'लखपति जससिन्धु' के प्रणयन में इसी पथ का अनुसरण किया है। उन्होंने मम्मट के 'काव्यप्रकाश' को आधार बनाया और साथ ही अपने पूर्ववर्ती कुलपति मिश्र के 'रस रहस्य' से भी सामग्री प्राप्त की है। इसका उल्लेख यथा स्थान इस प्रबन्ध में किया जा चुका है। यहाँ हम विशेष रूप से आचार्य केशवदास तथा मतिराम के प्रभाव को रेखांकित करना चाहेंगे।

केशव और कुँवरकुशल :

कुँवरकुशल केशवदास से अनेक स्थलों पर प्रभावित हुए हैं उन सभी का वर्णन ग्रन्थ विस्तार के भय से करना समीचीन प्रतीत नहीं होता अत: कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

केशव ब द्वारा दिया गया उदाहरण -

'केशव प्रात बड़े ही, बिदा कहँ आये प्रिया पहँ नेह नहे री ।
आऊँ महावन ह्वै जु कहो, हँसि बोल द्वै ऐसी बनाय कहे री ।।
को प्रति उत्तर देय सखी सुनि लोल विलोचन यों उमहे री ।
सौंहें करौ हरि हारि रहे अब रातिक लौं असुवा न रहे री ।।[1]

कुँवरकुशल द्वारा दिया गया उदाहरण—

'भोर ही में नंद के किसोर मोर पंख धरें आये राधिका के ठौर बोलें
ऐसी बानियें ।।
सीख हसि देहु तुम महाबन जैहैं हम नरम नरम फल फूल तोरि आंनियें ।।
उतर न दयो फेरि मन काहू लयौं घेरि नैननि तैं तिहि बेर पूर
बह्यौं पानी है ।।
कोरि कोरि सौं हैं करि जोरि जोरि करी हरी तऊ परसन्न मुख कह्यौं
नहीं रानीयैं।[2]

प्रस्तुत उदाहरण अश्रयाक्षेप का है । प्रेम के भंग की बात सुनते ही जहाँ सात्त्विक भाव पैदा हो वहाँ आक्षेप (अश्रय) अलंकार होता है । केशवदास तथा कुँवरकुशल दोनों ने एक ही विषय लिया है तथापि भिन्नता देखने को मिलती है । तृतीय पंक्ति में केशवदास ने केवल स्वरभंग तथा अश्रु नामक सात्त्विक भावों का वर्णन किया है, कुँवरकुशल ने विकलता नामक संचारी भाव का भी समावेश किया है । वास्तव में यह सत्य भी है कि अप्रिय बात सुन कर मन भी व्याकुल होने लगता है, जिसकी ओर केशव ने संकेत नहीं किया है । अंतिम पंक्ति में केशव ने केवल सौगन्ध खाने की बात कही है जबकि कुँवरकुशल ने सौगन्ध खाने के साथ-साथ हाथ जोड़ने की प्रक्रिया भी बताई है। ~~जिससे प्रस्तुत छंद में~~ अश्रयाक्षेपालंकार और भी पुष्ट हो गया है।

1- प्रियाप्रकाश, टीकाकार-लाला भगवानदीन, पृ0 180

2- ल.ज.सिं0 त्र.त.छन्द सं0 144

यद्यपि कुँवरकुशल ने अर्थ्य आक्षेप अलंकार को स्पष्ट करने के लिए केशव के उपरि उद्धृत छंद से भावग्रहण किया है किन्तु इनके वर्णन द्वारा भावोत्कर्ष ही हुआ है। उसमें किसी प्रकार की न्यूनता नहीं आने पाई है। अर्थ्य आक्षेपालंकार और भी पुष्ट हो गया है।

आ० केशव का एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है -

'ज्यौं ज्यौं बहु बरजी मैं, प्राणनाथ मेरे प्राण,
अंग न लगाइये जू आगे दुख पाइबो।
त्यौं त्यौं हँसि हँसि अति शिर पर उर पर,
कीबो कियो आँखिन के ऊपर खिलाइबो।
एकौ पल इत उत साथ ते न जात दीन्हे,
लीन्हे फिरे हाथ ही कहाँ लौं गुण गाइबो।
तुम तौ कहत तिन्हें छांड़ि के चलन अब,
छाड़त ये कैसे तुन्हें आगे उठि धाइबो।।[1]

कुँवरकुशल द्वारा प्रस्तुत उदाहरण -

मैं बरजे पहले ही पिया तुम प्रान सु मेरे न अंग लगैये।
आठहु जाम जु राखि हौं छाती पैं ताहि अबै कहाँ क्यों बिरमैये।
पैं तुम मानी नहीं यह बात कहो अब कैसे किये समझैये।।
चालत हो तुम द्वारिका को हरि तौ इनि कौं लै आगाऊ चलैये।।[2]

1- प्रियाप्रकाश, टीकाकार-लाला भगवानदीन, पृ० 179

2- ल.ज.सिं0, त्र.त.छन्दसं0 142

यहाँ पर केशवदास के वर्णन में कहीं अधिक मार्मिकता है। आँख, सिर, हृदय इत्यादि के अलग अलग वर्णन से प्रेम की अधिकता का पता चलता है। अंतिम पंक्ति में प्रयुक्त 'उठि धाइबो' में जो त्वरितता और व्याकुलता है वह कुँवरकुशल के 'आउ चलैं' में नहीं।

इतना ही नहीं एक स्थान पर तो भाव सौन्दर्य के साथ-साथ शब्द-योजना का भी पूर्णतः अनुगमन कर लिया है -

केशव द्वारा दिया गया उदाहरण -

मंत्री मित्र पुत्र जन केशव कलत्र गन,
सोदर सुजन जन भट सुख साज सों।
एतो सब होत जात जो पैं है कुशल गात,
अब ही चलौ कै प्रात सगुन समाज सों।।
कीन्हों जो पयान बाधि छमिये सो अपराध,
रहिये न पल आध, बँधिये न लाज सों।
हौं न कहौं, कहत निगम सब अब तब,
राजन परम हित आपने ही काज सों।।[1]

कुँवरकुशल द्वारा दिया गया उदाहरण -

परम सु पुत्र और पुत्र के पवित्र पुत्र सिगरी कलत्र मित्र मंत्री भट साज सौं।
ये ते सब रहैं तेय संग जो कुशल अंग लगत सुरंग चलौ सुगुन समाज सौं।।
इतनौं अयान बाध कीनौं जौं प्रयान आप भले हौं सयान पिय बधिये
न लाज सौं।।
बेद कह्यौ भेद व निति सही मानौं बात सत राजनि के हौं हित आप
नेही काज सौं।।[2]

1- प्रियाप्रकाश, टीकाकार-लाला भगवानदीन, पृ0 183

2- ल.ज.सिं0, त्र.त.छन्द सं0 152

यह उदाहरण आशिष आक्षेप का है। इसमें अपने दुःख को छिपाकर प्रसन्नतापूर्वक कथन प्रस्तुत किया जाता है। यहाँ पर दोनों छ की नायिका नायक के गमन पर अपना दुःख छुपाकर प्रसन्नता प्रकट कर रही है। कुँवरकुशल ने केशवदास की भाँति साज सौं, सगुन समाज सौं, लाज सौं, काज सौं ज्यों के त्यों ग्रहण कर लिए हैं।

मतिराम और कुँवरकुशल :

दो तीन उदाहरण ऐसे प्रस्तुत किए जा सकते हैं जिन पर मतिराम का प्रभाव दृष्टिगत होता है। मतिराम अपने आश्रयदाता का गुणगान अनेक प्रकार से करते हैं, उसे ईश्वर तुल्य बताकर उसकी महत्ता का प्रतिपादन करते हैं। कुछ इसी प्रकार का आशय कुँवरकुशल का भी रहा है। मतिराम जहाँ राव भावसिंह के मन में साक्षात् ईश्वर की विद्यमानता को स्वीकार करते हैं वहीं कुँवरकुशल लखपति जी की भुजा के भार को इतना समर्थ बताते हैं कि वह पृथ्वी का भार भी वहन कर लेती हैं। हालाँकि आधार दोनों का भिन्न रहा है परन्तु मूल भाव दोनों में एक ही है -

जाके कोस भीतर भुवन करतार ऐसो,
जाके नभिकुंड मैं कमल बिकसत हैं;
कहै 'मतिराम' सब थावर जंगम जग,
जाकी दिग्घ उदर-दरी मैं दरसत है।
जाके एक एक रोम कूपनि मैं कोटिन,
अनंत ब्रह्मांडनि को वृंद बिलसत है;
राव भावसिंह तेरी कहा लौं बड़ाई करौं,
ऐसो बड़ो प्रभु तेरे मन मैं बसत है।।[1]
(मतिराम)

1- मतिराम-ग्रन्थावली-सम्पा0पं0 कृष्णबिहारी मिश्र, पृ0 397-98

मेरू ओ मंध्रन से गिरि धारत और धराधर भार सह्यौं ।।
सात समुद्र कौं राषत है बन मानव तो परि राचि रह्यौं ।।
केते बषान करूं भुज तेरे मैं लेस न काहू कौं षोद लह्यौं ।
ऊँसै मैं यादि भुजा लषावीर की आइ सो ताकिन मौन गह्यौं ।।[1]

इसी तरह दोनों कवि अपने आश्रयदाता को रण में रूद्र सदृश मानते हैं -

`दुरजन के गन कहत हैं, भावसिंह रन-रूद्र`[2] ।

(मतिराम)

`असुर पछारे ओज सौं रूद्र लषा रन रंग[3] ।

इसी तरह उनकी दानशीलता के आगे कामधेनु,सुरतरू भी व्यर्थ हैं -

`राव भाव सिंहजू के दान की बड़ाई देखि,
कहा कामधेनु है, कछूनसुरतरू है ।[4]

(मतिराम)

`महाराउ लषाधीर भूप ही तैं सब सिद्धि इंदवंद कल्पवृक्ष काहे कौं
बनाये है ।[5]

कल्पतरू तुं गुमान करै क्यों लषपति दाता समान नहीं कौं ।[6]

1- ल.ज.सिं0,स.त.छन्द सं0 7

2- मतिराम-ग्रन्थावली -सम्पा0 पं0 कृष्णबिहारी मिश्र, पृ0 364

3- ल.ज.सिं0, द.त.छन्द सं0 7

4- मतिराम-ग्रन्थावली- सम्पा0 पं0 कृष्णबिहारी मिश्र, पृ0 361

5- ल.ज.सिं0 , त्र.त.छन्द सं0 32

6- वही- छन्द सं0 37

गज वर्णन :

हाथी हमारे सैन्यदल का महत्वपूर्ण अंग माना जाता था। पूर्व समय में वैसे भी हाथी प्रतिष्ठा का सूचक रहा है। लड़ाई के लिए तो आवश्यक ही था। राजा अपनी सेना में हाथियों को भी स्थान देते थे। इसीलिए उस समय में हाथियों को बड़ा महत्व था। राजा हाथी का दान देकर पुण्य कमाते थे। "धर्मशास्त्र के अनुसार गजदान की बड़ी महिमा है; इस प्रकार के दान से दाता को बड़ा पुण्य होता है। कवि लोग गज-दान पाना बड़े सौभाग्य की बात समझते हैं।[1] इस गज-वर्णन को लखपति जससिन्धु में भी प्रश्रय मिला है। इसी तरह मतिराम ने भी अपने 'ललित-ललाम' के अन्तर्गत गज-वर्णन किया है। यहाँ पर दोनों का तुलनात्मक वर्णन किया जा रहा है।

कुँवरकुशल के आश्रयदाता के हाथी ठाठ-बाट को प्रदर्शित करते हैं[2] तथा सवारी के काम में भी लाये जाते हैं।[3] दान में भी लखपति जी हाथी दिया करते थे[4] इसलिए ही हाथी के दानी कहलाते हैं।[5] मतिराम के आश्रयदाता का भी हाथी दान देना सहज स्वभाव है।[6] लखपति ऐसे राजा हैं जिनके हाथी दान में

1- मतिराम-ग्रंथावली-पं0 कृष्णबिहारी मिश्र, पृ0 73

2- बड़े सुभट गज ठाठ बहु -ल.ज.सिं0 प्र.त.छन्द सं0 4

3- झलकै फौलनि कै झलै औ असवार अपार ।। वही- छन्द सं0 130

4- दान दान जुत गज दिये ।
वही- छन्द सं0 40

5- लाखनु मानी है हाथी कै दानी हैं ।
वही- छन्द सं0 677

6- साहनि सौं अकसिबो हाथिन को बिकसिबो,
राव भावसिंहजू को सहज सुभाव है ।
मतिराम-ग्रंथावली-सम्पा0 पं0 कृष्णबिहारी मिश्र, पृ0 423

किये जाने योग्य हैं अर्थात् उच्चतम है [1] तो दूसरी ओर भावसिंह के हाथियों को प्राप्त करने के लिए मनसबदार भी लालायित रहते हैं। [2] राजा लखपति के हाथियों से मद झरता है और वे कैलास की चोटी तक ऊँचे हैं, युद्ध में शत्रु दल के बोल तक फिरा देते हैं अर्थात् उनके सामने शत्रु दल अपने होश-हवास खो बैठता है ऐसे राजा के हाथी सुशोभित होते हैं। [3] जब लखपति के हाथी मदमस्त होकर गर्जन करते हैं तो पृथ्वी डोलने लगती है और झरने वाले मद से जल-थल एक हो जाते हैं जिस प्रकार बादलों के पानी से जल -थल एक हो जाते हैं। [4] इसी प्रकार भावसिंह के हाथी भी बादलों की तरह मद से झलकते रहते हैं और पृथ्वी पर मंद-मंद गति से चलते हैं। [5] यहाँ पर मतिराम ने हाथी की मस्त चाल की ओर संकेत किया है और कुँवरकुशल उनके मदमस्त स्वरूप के साथ-साथ क्रोधित रूप को भी दर्शाते हैं। लखपति के हाथी मदमस्त होकर झूमते हैं और जंग के मैदान में गेंद की तरह खेलते हैं अर्थात्

---

1 राजा तौ लखधीरा जाके हाथी सुदान कै दीजै। ल. ज. सिं., पंचदश त., छं. सं. 89

2- मंगन की कहा है, मतंगनि के मांगिबे को,

मनसबदारन के मन ललकत है।

मतिराम-ग्रंथावली- सम्पा० पं० कृष्णबिहारी मिश्र, पृ० 375

3- हाथी मदझार हेरे ऊंचे कैलासश्रृंग जिय ओपे।

अरि दल कौ बोल फेरे सामा भूपाल कै सोहै ।।

ल.ज.सिं० पंचदश तरंग, छन्द सं० 490

4- गज मदहु गरजन घु घु घु घु ग ल ल ल

नद भर जल थल जलद ज्यों।

ल.ज.सिं०, चतुर्दश तरंग, छन्द सं० 296

~~4- राजा तौ लखधीरा जाकै हाथी सुदान कै दीजै।~~
~~ल.ज.सिं० पंचदश तरंग, छन्द सं० 89~~

5- सजल जलद निमि झलकत मदजल,

छिति-तल हलत चलत मंद गति में।

मतिराम-ग्रंथावली- संपादक-पं० कृष्णबिहारी मिश्र, पृ० 374

शत्रु दल के सैनिकों के सिरों को कुचलते चले जाते हैं[1] दूसरी ओर राव भावसिंह के हाथियों की फौज शत्रु को मार डालती हैं।[2] इसी तरह लखपति के हाथी मद में अंधे होकर अपने कुंभ से बड़े-बड़े शरीरों को भी कूट डालते हैं और युद्ध में रक्त से भीगे हुए शत्रु को देखकर उसका मान और बल शीघ्र ही नष्ट कर देते हैं।[3] वहीं पर भावसिंह के हाथी भी शारीरिक शक्ति के बल पर जंग जीत लेते हैं और -

जीते जोर जंग अति अतुल उतंग तन,
दूनी स्याम रंग छबि छपदनि छाए तें ;
कहै मतिराम नभ नदी के कुसुम सम,
उड़ै उड़गन सुंड अनिल उड़ाए तें।
मद जलधार बरषत जिमि धाराधर,
धक्कनि सौं धुक्करैं धरनि धर धाए तें ;
आवै कविराज ऐसे पावैं गजराज राव,
भाव सतासुत सौं आर गुन गाए तें।।[4]

1- सहस मद मत्त गज लाख घुम फरहरिय साहि बिबि जंग लेखत गिंदु।
ल.ज.सिं० चतुर्दश तरंग, छन्द सं० 240

2- दुज्जनि केदल कबि लोगनि के दारिदनि,
नीके करि गजन की फौजनि सो मारे हैं।
मतिराम-ग्रंथावली- सम्पा० पं० कृष्णबिहारी मिश्र, पृ० 371

3- मद अंध गंध गज कुंभ केकपार कूट,
तहां लागि कुटि डारै उन्नता शरीर कौ।
संगर मैं सोनितसौं भीनो बैरी बिलोकत
बेगिही उतारै मान बलबंड बीर कौं।।
ल.ज.सिं०, षाष्ठ तरंग, छन्द सं० 86

4- मतिराम-ग्रंथावली-संपादक-पं० कृष्णबिहारीमिश्र, पृ० 376-77

एक अन्य स्थान पर भी कुँवरकुशल हाथियों की प्रशंसा करते हुए कहते हैं -

ठौरै ठौरै माते हाथी ठाडे हैं मानो मेघ श्रृंगे मेहा बाढे हैं ।
हाथी पक्का हथ्थे भग्गा यौं राचे नीली भू फैंसंपा रानी ज्यौं नाचै ।
गुंजै भौंरै फूले गंडै हैं थले लंबे दंता सुंडा डंडै भू फूलै ।
सोहैं बंध्या पब्बे के मोटे साथी हेरौं महाराजा लाष्षा के हाथी ।।[1]

कुछ इसी तरह का वर्णन भूषण द्वारा भी किया गया है।[2] महाराजा लखपति के हाथी इतने ऊँचे हैं कि उनके आगे ऐरावत भी कुछ महत्व नहीं रखते।[3] जब राजा के हाथी दौड़ते हैं तब बादलों के आने का भ्रम होने लगता है -

घनुष गरजि बलधार बहु घुरवा गज धावंत ।
मघवा कौं ये भ्रमु कियौं लष्षपति कल आवंत ।।[4]

1- ल.ज.सिं0, छन्द सं0 803,4

2- उलदत मद, अनुमद ज्यौं जलधि जल,
बलहद, भीम कद, काहू के न आह के ;
प्रबल प्रचंड गंड-मंडित मधुप बृंद,
बिंध्य-से बलंद, सिंधु सातहू के थाह के ।
'भूषन' भनत, फूल झंपति झपान झुकि,
झूमत झुलत झहरात रथ डाह के ;
मेघ सेघमंडित, मजेजदार, तेज पुंज,
गुंजरत कुंजर कुमाऊँ-नरनाह के ।।
मतिराम-ग्रंथावली - सं0 पं0 कृष्णबिहारी मिश्र, पृ0 80 से उद्धृत ।

3- ऐरावत कहा याके हाथी है उतंग कैं ।
ल.ज.सिं0, त्र.तरंग, छन्द सं0 48

4- ल.ज.सिं0, त्र.तरंग, छन्द सं0 67

* लखपतिजससिन्धु में कुछ ऐसे भी छन्द मिलते हैं जिनमें निहित भाव एक से अधिक कवियों द्वारा ग्राह्य हुए हैं।

इसी विषाय को लेकर मतिराम ने जो छन्द प्रस्तुत किया है वह बड़ा मनोहारी बन पड़ा है -

पावस भीति बियोगिनि बालनि, यों समुझाय सखी सुख सानैं ;
जोति जवाहिर की 'मतिराम' नहीं सुर चापघिनौं छबि छानैं ।
दंत लसैं बक पाँति नहीं, धुनि दुंदुभी की न घने घन गाजैं ;
रीझि कै भाऊ नरिंद दिए कबिराजनि के गजराज बिराजैं ।।[1]

कवि मतिराम के गज वर्णन के विषाय में पंडित कृष्णबिहारी मिश्र का कथन है - हिन्दी भाषा के कवियों में जैसा गज-वर्णन मतिराम जी ने किया है , वैसा वर्णन करने में अन्य कवि समर्थ नहीं हो सके ।[2] किन्तु कुँवरकुशल के उपर्युक्त गज-वर्णन को देखकर यह कहा जा सकता है कि गज-वर्णन में कुँवरकुशल को भी महारत हासिल थी । उन्होंने लखपतिसिंह के आश्रय में रहकर निकट से गज सेना को देखा था, इसीलिए इनके वर्णन में भी वास्तविक चित्र आ पाये हैं। पंडित कृष्णबिहारी जी कहते हैं - 'भाषा के कवि हाथियों की प्रशंसा करते समय सूंड की चंचलता, उनकी ऊँचाई और गंडस्थल में मद के फलकने आदि का वर्णन अवश्य करते हैं।[3] कुँवरकुशल ने मात्र हाथियों के उपयुक्त रूप को ही नहीं वर्णित किया है वरन् युद्ध में हाथियों का कौशल,उनकी चिंघाड़, उनका बल आदि को भी छन्दोबद्ध किया है।जैसे - परस्त्री गमन के पश्चात् प्रात:काल में जब नायक नायिका के पास आता है उसकी अस्तव्यस्तता ही उसकी दशा का द्योतन कर देती है। ऐसा चित्रण सूरदास,मतिराम,कुलपति मिश्र तथा कुँवरकुशल चारों ने ही किया है -

---

1- मतिराम-ग्रंथावली- सं0 पं0 कृष्णबिहारी मिश्र, पृ0 368-69

2- वही - पृ0 77

3- वही- पृ0 73

आजु हरि रैन उनींदे आए ।
अंजन अधर ललाट महाउर नैन तमोर खाए ।
मगन देह सिर पाग लटपटी भृकुटी चन्दन लाए ।
हृदय सुमन नखरेख बिराजति कंकन पीठि बनाए ।। [1]

(सूरदास)

`जावक लिलार ओठ अंजन की लीक सोहे ।
खैये न अलीक लोक लीक न बिसारिए ।
कबि `मतिराम` छाती नख छत जगमगै
डगमगै पग सूधे मग मैं न धारिए ।।
कस कै उघारत हौ पलक पलक या तैं
पलका पै पौढ़ि स्रम राति को निवारिए ।
अटपटे बैन मुख बात न कहत बनै
लटपटे पेंच सिर पाग के सुधारिए ।। [2]

(मतिराम)

मदनगुपाल उर मरगजी माल देखि भई हौं निहाल आन भूखन सुहावने ।
लटपटी पाग सिर घुटे केस नखपद अंग अंग छबि मैन मन कौं सँतावने ।
तारूस नैन कहौ कौन के भवन भाए प्रात उठि आए भली कीनी भोर आवने ।
हियो धरकत तुमैं नीकैं जानी प्यारेलाल सांज सेज जाइ दैहौ उत्तर कहाउते।। [3]

(कुलपति मिश्र)

1- मतिराम कवि और आचार्य- महेन्द्रकुमार , पृ0 341 से उद्धृत

2- वही - पृ0 341 से उद्धृत ।

3- र.र.पृ.वृ. छन्द सं0 119

मरगजीमल उर मदन गुपाल लाल लटपटी पाग सिर सोभासर साये हौं ।
उरफे हैं बार पीत पट षामे डारि बैनु नीकैं कटिधारि रूप मार कौं बहाये हौं ।।
कुंज कुंज भौंरनि की गुंज सुनौं रसपुंज भली भली भामिनी के मन ही मैं भाये हैं ।
मन मैं मुदित राजि सूर के उचित आजि नेह पागि बाँधिबे कौं मेरे गेह आये हैं ।।[1]

कुँवरकुशल ने अपने उदाहरण की तृतीय पंक्ति में वातावरण की ओर भी इंगित किया है।

इसी प्रकार एक अन्य उदाहरण भी देखा जा सकता है। बिहारी तथा मतिराम ने भी कृष्ण का रूप वर्णन करते हुए अपने मन में निवास करने का अनुरोध किया है -

सीस मुकुट कटि काछनी कर मुरली उर माल ।
इहिं बानिक मो मन बसौ सदा बिहारीलाल ।।[2]

मुंज गुंज के हार उर, मुकुट मोर पर पुंज ।
कुंजबिहारी बिहरियै, मेरेई मन - कुंज ।।[3]

कुँवरकुशल का वर्णन देखिए -

'सरस रंग सुपायनु सोहनी मुष बनी मुरली छबि मोहनी ।
गर बिराजत गुंजनि माल ये लषहु कान्हर रूप रसाल ये ।।
मुकुट सीस बन्यौ छिबि कौं महा रूचिर कुंडल कान दुठौं रहा ।
बसन पीत गरैं बनमाल है लषत लोक बिहारीलाल है ।।[4]

1- ल.ज.सिं0, षाष्ठ तरंग, छन्द सं0 93

2- बिहारी-सम्पादक-विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 237

3- मतिराम-ग्रन्थावली- पं0 कृष्णबिहारी मिश्र, पृ0 431

4- ल.ज.सिं., छं.सं. 832,33

उपर्युक्त छन्दों में जहाँ बिहारी और मतिराम ने एक ही दोहे में कहा है वहीं कुँवरकुशल ने दो द्रुतविलम्बित छन्दों में अपने आशय को अभिव्यक्त किया है। बिहारी तथा मतिराम ने अपने ही मन में बसने की बात कही है जबकि कुँवरकुशल ने समस्त लोगों के द्वारा दर्शनीय बताया है। अत: यहाँ व्यापकता का गुण है।

उपलब्धि :

हिंदी क्षेत्रों से अति दूर गुजरात प्रदेशों में जहाँ न रीति काव्य की परम्परा थी और न सुलभ परिवेश ही था। कुँवरकुशल ने रीति ग्रन्थों की हिंदी प्रदेशों की परम्परा को न केवल संचारित ही किया वरन् अपने महान् रीति ग्रन्थ `लखपतिजससिन्धु` के प्रणयन द्वारा महत्वपूर्ण योगदान भी किया। लखपतिजससिन्धु - संस्कृत की भामह, दण्डी की पूर्ववर्ती परम्परा का नहीं वरन् आनन्दवर्द्धन और मम्मट की परवर्ती परम्परा का अनुमोदन करता है। कुँवरकुशल ने अपने ग्रन्थ में गद्य का भी प्रयोग किया है। यह गद्य कुलपति मिश्र तथा सोमनाथ की भाँति संक्षिप्त नहीं वरन् अत्यन्त विस्तृत है। लक्षणोपरान्त गद्यमयी टीका में पुन: उसे स्पष्ट किया गया है तथा उदाहरण देकर पुन: उसे भी गद्य में समझाया गया है। अत: यदि कभी लक्षण अथवा उदाहरण का अर्थ समझने में कोई कठिनाई आती है तो उसका निवारण गद्य पढ़ने के पश्चात् हो जाता है। इस तरह कुँवरकुशल द्वारा प्रयुक्त गद्य पद्यबद्ध सिद्धान्त तथा उनके उदाहरणों की व्याख्या एवं स्पष्टीकरण के लिए प्रयुक्त हुआ है। यह वह समय था जब सिद्धान्त ग्रन्थों में गद्य का विकास नहीं हो पाया था। ऐसे समय में इतनी अधिक मात्रा में गद्य का प्रयोग अपने आप में एक उपलब्धि है।

कुँवरकुशल ने अपने ग्रन्थ `लखपतिजससिन्धु` में जहाँ काव्य के अन्य अंगों का समावेश किया है वहीं छन्द को भी समाहित करके महत्व प्रदान किया है। काव्य-रचना के लिए छन्द का ज्ञान परम आवश्यक है इस आवश्यकता का अनुभव उन्हें `ब्रजभाषा काव्यशाला` में आचार्यत्व का कार्यभार सँभालते हुए हुआ होगा। अत: अपने ग्रन्थ में छन्द का भी विस्तृत विवेचन किया है। छन्द के गणितात्मक तथा

विवेचनात्मक दोनों पक्षों को लिया है जिससे कुँवरकुशल की समग्र निरूपण की प्रवृत्ति का पता चलता है। यह अपने आप में उपलब्धि ही मानी जायेगी।

यहाँ तक तो कुँवरकुशल के आचार्यत्व सम्बंधी उपलब्धियाँ ही मिलती हैं, कवित्व की दृष्टि से भी इनकी उपलब्धि मिलती है। कुँवरकुशल ने ग्रन्थ में उदाहरण देते समय मम्मट के 'काव्यप्रकाश' का सहारा लिया है तथापि उन्हें युग के अनुरूप ढाल कर प्रस्तुत किया है। पूर्व-प्रचलित वर्णन को ही नये ढंग से प्रस्तुत करने में भी कवि की मौलिकता समझी जाती है। यही बात हम कुँवरकुशल के सम्बन्ध में भी कह सकते हैं। 'काव्यप्रकाश' के अंतर्गत आये हुए शृंगारपरक तथा वीर रस के उदाहरणों में किसी नायिका अथवा राजा का स्पष्ट नामोल्लेख नहीं मिलता, उन्हीं को लेकर कुँवरकुशल ने 'राधा-कृष्ण' तथा 'लखपति का नाम प्रयुक्त किया है। ऐसे प्रबंध प्रयास कुँवरकुशल की उपलब्धि ही मानी जानी चाहिए।

कुँवरकुशल एक जैन मुनि थे तथापि इन्होंने अपने ग्रन्थों के प्रारम्भ में सर्वत्र सूरज, गणेश, सरस्वती तथा आसापूरा की ही वन्दना की है। तथा ग्रन्थ के भीतर दिये गये उदाहरणों के विषय भी राधा-कृष्ण, शिव-पार्वती ही रहे हैं। अतः यहाँ पर कुँवरकुशल अपनी साम्प्रदायिक भावना से ऊपर उठकर एक धर्म-निरपेक्ष व्यक्ति के रूप में हमारे सामने आते हैं। यह उनकी एक उपलब्धि ही स्वीकार की जानी चाहिए।

हिंदी रीति-ग्रन्थों में 'लखपति जससिन्धु' का स्थान :

कुँवरकुशल कृत 'लखपति जससिन्धु' एक सर्वांग निरूपक ग्रन्थ के रूप में हमारे सामने आया है। कुँवरकुशल ने इस ग्रन्थ के प्रणयन में संस्कृत के आचार्य मम्मट के 'काव्यप्रकाश' को आधार बनाकर संस्कृत की परवर्ती ध्वनिवादी परम्परा को

आगे बढ़ाया है और हिंदी के चिन्तामणि, मतिराम आदि आचार्यों की श्रेणी में अपना स्थान प्राप्त कर लिया है। काव्य के दस अंगों में से नाटक और नायिका-भेद को छोड़ कर शेष सभी अंगों का विवेचन व विश्लेषण बड़े ही विस्तृत धरातल पर प्रस्तुत किया है। एक-एक अंग के प्रत्येक पक्ष को अनावृत करके उससे सम्बंधित सम्पूर्ण जानकारी दी है। प्रत्येक तत्व का विस्तारपूर्वक वर्णन करके अपनी जिज्ञासा तथा कौतूहल की वृत्ति का परिचय दिया है। जिज्ञासा और कौतूहल की वृत्ति के कारण ही व्यक्ति तत्सम्बंधित विषय का गहराई से वर्णन करता है मानो उसकी एक-एक नस से पाठकों को परिचित करा देना चाहता हो। यही प्रवृत्ति `लखपति जससिन्धु` में विद्यमान है। इतना ही नहीं अपने आशय की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने उस समय में गद्य का प्रयोग समस्त ग्रन्थ में कर दिखाया जब उसका विकास भी नहीं हो पाया था। अत: अपने आचार्यत्व के गुरुतर कर्तव्य की पूर्ति हेतु इन्होंने भरपूर प्रयास किया है जिसमें उन्हें सफलता भी मिली है। इसके अतिरिक्त भी वर्णन करने के पश्चात् पुन: उसका सार रूप में प्रतिपादन करना उनकी अध्यापकीय शैली का द्योतन करता है। `लखपति जससिन्धु` में सामग्री संचयन भी अधिक मात्रा में मिलता है। अपने विषय की स्पष्ट व्याख्या करने के लिए जहाँ कहीं से भी सही सामग्री ग्रहण करनी पड़ी है, की है और इस तरह अपने कथन को सुचारु रूप से, परिमार्जित ढंग से प्रस्तुत किया है। `लखपतिजससिन्धु` में कुँवरकुशल की अन्धानुकरण की प्रवृत्ति देखने को नहीं मिलती। इनमें स्वतंत्र विचारणा शक्ति पर्याप्त मात्रा में मिलती है। यद्यपि `लखपतिजससिन्धु` का आधार मम्मट का काव्यप्रकाश रहा है तथापि अलंकार और छन्द जैसे महत्वपूर्ण तत्वों को भी अपने लक्षण ग्रन्थ में समाहित कर लिया है। मम्मट ने अलंकार का वर्णन तो किया है लेकिन कुँवरकुशल ने उनसे भी आगे बढ़ कर अत्यन्त विस्तृत वर्णन किया है। इसके लिए उन्होंने `चन्द्रालोक` और `कुवलयानन्द` को आधार बनाया है। छन्द का वर्णन करने के लिए `प्राकृतपैंगलम्` तथा छन्दोऽनुशासन को अपने सामने रखा है।

'लखपतिजससिन्धु' का काव्य पक्ष भी अत्यन्त समृद्ध है। शृंगार,प्रशस्ति तथा भक्ति-नीति की त्रिवेणी इस 'सिन्धु' में आकर मिल गई है। संयोग शृंगार वर्णन के अन्तर्गत नायक-नायिका का रूप चित्रण, उनका मनोविनोद, एक दूसरे के प्रति मिलने की उत्कण्ठा, मानावस्था में दूती द्वारा मनवाने का उपक्रम इत्यादि के भावपूर्ण चित्र प्रस्तुत किए हैं। विप्रलम्भ शृंगार के अंतर्गत नायिका का दु:ख, उसकी व्यथा, उसकी पीड़ा तथा विकलता इत्यादि के बड़े ही मार्मिक वर्णन मिलते हैं। इसी प्रकार प्रशस्ति का वर्णन करते समय अपने आश्रयदाता की गुण-ग्राहकता, उनकी विभिन्न अभिरूचियाँ, उनका प्रताप, उनका शौर्य तथा पराक्रम जैसे बहुरंगी मौलिक इस 'सिन्धु' में दिखाए हैं। भक्ति तथा नीति वर्णन में भी इस संसार की असारता, पारिवारिक रिश्तों की व्यर्थता, धन और यौवन की नश्वरता जैसे कटु सत्यों को उल्लिखित किया है, नीति कथन में परनिंदा का त्याग, सच बोलना, सीधी राह पर चलना इत्यादि जैसे सामान्य ज्ञान को भी प्रस्तुत किया है। अपने इस समस्त वर्णन को अभिव्यक्ति देने के लिए शब्द-योजना, वर्ण-मैत्री, उक्ति-वैचित्र्य, सबल भाषा, बिम्ब तथा लयात्मक शैली का प्रयोग किया है। साथ ही प्रकृति को भी उद्दीपन रूप में लेते हुए उसका चित्रण किया है।

यह ग्रन्थ एक अन्य दृष्टि से भी महत्वपूर्ण बन जाता है। अन्य हिंदी रीति ग्रन्थों में जहाँ केवल एक ही (हिन्दी) प्रदेश की परिस्थितियों का प्रभाव व चित्रण देखने को मिलता है वहीं 'लखपति जससिन्धु' में हिन्दी प्रदेश की परिस्थितियों के साथ-साथ तत्कालीन भुज की परिस्थितियों का भी दिग्दर्शन देखने को मिलता है। इस ग्रन्थ की द्वितीय तरंग तो उस समय का सांस्कृतिक बिम्ब ही प्रस्तुत कर देती है।

अत: समग्रतया हम कह सकते है कि लखपति जससिन्धु हिन्दी रीति ग्रन्थों में महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर सकता है। यह एक अलग बात है कि यह ग्रन्थ अब तक लोगों के लिए अज्ञात ही रहा है। अन्यथा इसकी विशालता तथा व्यापकता को देखकर यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि उस समय में संचालित 'ब्रजभाषा काव्यशाला

यह ग्रन्थ अवश्य पढ़ाया जाता होगा । परन्तु राज्यों के विलीनीकरण के कारण ही यह ग्रन्थ सुरक्षित हाथों में न पहुँच सका और न ही इसका अनुशीलन व अध्ययन ही हो सका । अब प्रकाश में आने पर विद्वद्मण्डली में यह ग्रन्थ 'कविकुलकल्पतरु', 'रस-रहस्य', शब्द-रसायन, रसपीयूषनिधि, काव्य निर्णय तथा काव्य-विलास जैसे अन्य रीतिग्रन्थों के समान सम्मान प्राप्त कर सकेगा इसमें कोई सन्देह नहीं ।

सम्भावनायें :

इस शोध-प्रबन्ध से प्रेरित होकर प्रबुद्ध जन कुँवरकुशल की अन्य रचनाओं को प्रकाश में लायेंगे और इनके अब तक अज्ञात जीवन वृत्त से पाठकों को अवगत करायेंगे । इतना ही नहीं प्रस्तुत ग्रन्थ 'लखपतिजससिन्धु' का और भी गहराई से अध्ययन, मनन किया जायेगा और सम्भवत: 'लखपतिजससिन्धु' की अन्य हस्तलिखित प्रतियाँ भी ~~उपलब्ध~~ उपलब्ध हो सकेंगी जिससे भविष्य में इस ग्रन्थ का सुसम्पादित रूप भी विद्वानों के समक्ष उपस्थित हो जायेगा ।